कवि

(१)

रात आधी से अधिक बीत चुकी थी। आकाश पर तारों की सभा सुसज्जित थी। कवि उन्हें देखता था, और सोच-सोचकर कुछ लिखता जाता था। वह कभी लेटता, कभी बैठता, कभी टहलता, और कभी जोश से हाथों की मुट्ठियाँ कसकर रह जाता था। वह कविता लिख रहा था।

इसी प्रकार रात्रि समाप्त हो गई, परन्तु कवि का गीत अभी तक अधूरा था। सूर्योदय की लाली देखकर उस पर निराशा-सी छा गई, मानो वे उसके जीवन के अन्तिम क्षण हों। उस समय उसका मुख कुम्हलाया हुआ फूल था, आँखें उजड़ी हुई सभा। कभी वह अपने गीत को देखता, कभी आकाश को—उसका हृदय प्रातःकाल के प्रकाश में रात्रि के अन्धकार को खोजता था, जिसमें तारे मुस्कराते थे, और मन्द मन्द चाँदनियाँ अपनी क्षीण किरणों के लम्बे लम्बे हाथ बढ़ाकर सोती हुई सृष्टि के अचेत मस्तिष्कों पर सुन्दर स्वप्नों से जादू करती थीं। वह इस जादू का गीत लिख रहा था। परन्तु अब प्रातःकाल हो चुका था। अकस्मात् कवि के मस्तिष्क में एक विचार उत्पन्न हुआ। उसने काग़ज़-पिंसल ली, और नदी की ओर चल पड़ा। वहाँ एकान्त था। उसने अपने हृदय के अन्धकार को बाहर निकाला, और उस काल्पनिक अन्धकार में गीत को पूरा किया। उस समय उसे ऐसी प्रसन्नता

हुई, मानो कोई राज्य मिल गया हो। अपने गीत को वह बार बार पढ़ता था, और झूमता था। गाता था, और प्रसन्न होता था। ऐसा जान पड़ता था, जैसे किसी बच्चे को सुन्दर रङ्गीन खिलौने मिल गये हों।

अचानक किसी के पैर की चाप सुनाई दी। कवि चौंक पड़ा, जैसे मृग का बच्चा आहट से चौंक उठता है। उसने अपने काग़ज़ के पुर्ज़े को छिपा लिया, और आँख उठाई। सामने लाला अमरनाथ अधीर खड़े थे। कवि को देखकर वे मुस्कराये और बोले, "क्या हो रहा है?"

लाला अमरनाथ विद्या-रसिक पुरुष थे, पूरे अपटुडेट। उनसे और कवि से अतिशय मेल-मिलाप था। कवि निर्धन था, और साथ ही यह कि ब्याह भी कर चुका था। उसके एक लड़का था, दो लड़कियाँ। प्रायः चिन्तित रहता था। परन्तु जीवन की बहुत सी आवश्यकताओं के होने पर भी उसे कोई काम करना इष्ट न था। वह इसमें अपनी मानहानि समझता था। प्रायः कहा करता, लोग कैसे मूर्ख हैं, थर्मामीटर से हल का काम लेना चाहते हैं। लाला अमरनाथ उसकी कविता पर लट्टू थे। कभी उसकी कविता का एक पद भी सुन लेते तो मस्त होकर झूमने लगते। धनाढ्य पुरुष थे, रुपये-पैसे की कुछ परवा न थी। वे उदारता से कवि की सहायता किया करते थे। इसमें उन्हें हार्दिक आनन्द प्राप्त होता था।

कवि ने उन्हें देखा, तो आँखों में रौनक़ आ गई, श्रद्धाभाव से बोला, "एक गीत लिख रहा था।"

"क्या शीर्षक है?"

"चन्द्रलोक।"

"वाह वा! शीर्षक तो बहुत अच्छा है, देखूँ कैसा लिखा है?"

कवि ने गीत लाला अमरनाथ के हाथ में दे दिया, और रुक-रुक कर कहा, "सारी रात जागता रहा हूँ।"

"हुँ।"

लाला अमरनाथ ने कविता पढ़ी, तो उनके आश्चर्य की थाह न थी। उन्होंने कविता की सैकड़ों पुस्तकें देखी थीं। बीसों कवियों से उनका परिचय था, परन्तु जो कल्पना, जो सौन्दर्य्य, जो भाव इस कविता में था, वह इससे

पहले देखने में न आया था। वे अपने आपमें मग्न हो गये। काग़ज़ उनके हाथों में काँपने लगा। उन्होंने कवि की ओर श्रद्धा-भरी दृष्टि से देखा, मानो वह कोई देवता है, और आनन्द के जोश में काँपते हुए कहा "कवि !"

(२)

कवि उनके मन की अवस्था को समझ गया। उसे अपनी आत्मा की गहराइयों में सच्चे आनन्द और अभिमान का अनुभव हुआ। उसने धड़कते हुए हृदय से उत्तर दिया, "जी !"

"यह कविता तुम्हारी है ?"

कवि को ऐसा जान पड़ा जैसे किसी ने गाली दे दी हो। लज्जा ने मुँह लाल कर दिया। उसने एक विचित्र कटाक्ष से लाला अमरनाथ की ओर देखा, और बोला, "हाँ, मेरी है।"

"मैंने ऐसी कविता आज तक नहीं देखी।"

कवि का दिमाग़ आसमान पर था। इस समय उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो संसार अपनी अगणित जिह्वाओं से उसकी कविता की प्रशंसा कर रहा है। तथापि उसने धीर भाव को न छोड़ा। मनुष्य जो सोचता है, प्रायः उसे प्रकट करने को ओछापन समझता है। कवि ने सिर झुकाया, और उत्तर दिया—"यह आपका बड़प्पन है।"

लाला अमरनाथ ने जोश से कहा, "बड़प्पन है ? नहीं। मैं तुम्हारी अनुचित प्रशंसा नहीं करता। तुम सचमुच इस योग्य हो। तुम अपने गुणों से अपरिचित हो। परन्तु मेरी दूरदर्शी आँखें साफ़ देख रही हैं कि कीर्त्ति तुम्हारी ओर पूरे वेग से दौड़ती हुई आ रही है। और वह समय अति निकट है, जब सफलता तुम्हारे लिए अपने सौवर्ण द्वार खोल देगी। विस्मित न हो, आश्चर्य न करो। कवि ! तुम वास्तव में कवि हो। तुम्हारी कल्पना गगन-मण्डल की ऊँचाइयों को छूती है, और तुम्हारा ज्ञान प्रकृति की नाईं विस्तृत है। नवीनता तुम्हारी कविता का सौन्दर्य्य है, और प्रभाव उसका अङ्गविशेष है। मैं सच कहता हूँ, तुम्हारी कविता पर लोग हठात् वाह वा करेंगे, और संसार तुम्हारा आदर करने को विविश होगा।"

प्रशंसा के वचन साहस बढ़ाने में अचूक ओषधि का काम देते हैं। कवि ने अभिमान से सिर ऊँचा किया, और कहा, "मैंने ऐसे गीत और भी तैयार किये हैं।"

"कितने ?"

"इससे पहले ग्यारह बना चुका हूँ। यह बारहवाँ है।"

लाला अमरनाथ पर जैसे किसी ने जादू कर दिया। उनको ऐसी प्रसन्नता हुई, जैसे किसी निर्धन को दबा हुआ ख़ज़ाना मिल गया हो। बच्चों की सी अधीरता से बोले, "वे कहाँ हैं ?"

कवि ने उत्तर दिया, "घर पर हैं।"

"चलो, मैं अभी देखना चाहता हूँ।"

कवि का शरीर रात भर जागने से चूर चूर हो रहा था। परन्तु कविता के दिखलाने के शौक़ ने थके हुए पैरों को पर लगा दिये। दोनों उड़ते हुए घर पहुँचे। लाला अमरनाथ ने गीत देखे, तो सन्नाटे में आ गये, जैसे कोयलों में हीरे मिल गये हों। वे कवि पर मुग्ध थे, उसकी कविता पर लट्टू। परन्तु उनको यह आशा न थी कि कवि इतनी उच्च कोटि पर पहुँच गया होगा। वह "दर्पण" नामक एक अत्युत्तम सचित्र मासिक-पत्र निकालने के विचार में थे। कवि की कवितायें देखकर यह विचार पक्का हो गया। जोश से बोले, "दर्पण" तुम्हें कीर्ति की पहली पङ्क्ति में स्थान दिलावेगा।

कवि के मस्तिष्क में आशा की किरण का प्रकाश हुआ, जैसे अँधेरी रात में बिजली चमक जाती है। उसने सहर्ष धड़कते हुए हृदय और काँपते हुए हाथों से गीत अमरनाथ के हाथ दे दिये।

(३)

इससे दूसरे दिन कवि सोकर उठा, तो कमर में दर्द था। परन्तु बेपरवाई कवियों का एक विशेष अङ्ग है। उसने इस ओर तनिक भी ध्यान न दिया और "मानवीय प्रकृति" पर विचार करने में लग गया। वह ग्रन्थों को पढ़ने की अपेक्षा इसके गौरव को बहुत मानता था। इसी प्रकार दो-चार दिन बीत गये। दर्द बढ़ता गया। यहाँ तक कि लेटना और बैठना कठिन हो गया। कवि को कुछ

चिन्ता हुई। भागा भागा वैद्य के पास पहुँचा। पता लगा फोड़ा है। वैद्य ने मरहम लगाने को दिया। परन्तु उससे भी कुछ लाभ न हुआ। यहाँ तक कि रात को सोना भी कठिन हो गया। उस समय कवि को विचार आया, किसी डाक्टर को दिखाना चाहिए। लाला अमरनाथ को साथ लेकर वह डाक्टर कुँवर-सेन के पास पहुँचा। डाक्टर साहब लाला अमरनाथ के मित्रों में से थे। उन्होंने बड़े ध्यान से फोड़ा देखा, और चिन्तित से होकर बोले, "आपने बड़ी बेपरवाई की, कारबंकल है।"

लाला अमरनाथ ने चौंककर कहा—"वह क्या होता है?"

"एक सख़्त क़िस्म का फोड़ा।"

"उसका उपाय भी कुछ है या नहीं?"

डाक्टर साहब कुछ देर चुप रहे, और फिर उत्तर दिया—"केवल एक उपाय है। मरहम से यह अच्छा न होगा।"

कवि ने अधीर होकर पूछा, "क्या?"

"आपरेशन।"

कवि की आँखों के सामने मौत फिर गई, घबराकर बोला, "आपरेशन सख़्त तो नहीं?"

"मैं आपको धोखे में रखना नहीं चाहता। आपरेशन सख़्त है। यदि आप पहले आ जाते, तो यह भयानक रूप धारण न करता।"

लाला अमरनाथ का मुख इन्द्रधनुष की मूर्ति था, घबराकर बोले, "क्या इसके सिवा और कोई उपाय नहीं?"

"कोई नहीं।"

"तो आपरेशन करवा देना चाहिए?"

"अवश्य और जल्दी। साधारण विलम्ब भी हानि पहुँचा सकता है।"

लाला अमरनाथ ने पूछा—"आपरेशन किससे करवाना उचित होगा?"

"मेरे विचार में सरकारी अस्पताल सबसे अच्छा स्थान है।"

लाला अमरनाथ ने कवि की ओर करुणा-दृष्टि से देखकर कहा—"तो करवा लो।"

कवि तनकर खड़ा हो गया। मानो उसने भय को पैरों तले कुचल डाला।

इस समय उसके मुख पर निर्भयता के चिह्न थे। साहस से बोला, "साधारण बात है। अब आपरेशन कोई अनोखी बात तो नहीं रहा। प्रतिदिन होते रहते हैं।"

और वह दूसरे दिन आपरेशन-रूम में मेज़ पर लेटा हुआ था।

(४)

एकाएक सर्जन साहब घबराये हुए बाहर निकले। अमरनाथ का कलेजा धड़कने लगा। उन्होंने आगे बढ़कर पूछा, "साहब! आपरेशन हो गया?"

सर्जन के मस्तक से पसीने की बूँदें टपक रही थीं, "तुम उसका कौन होता है?"

"मैं उसका मित्र हूँ। उसका क्या हाल है?"

"हार्ट फ़ेल हो गया।"

अमरनाथ पर जैसे बिजली गिर पड़ी। चिल्लाकर बोले, "क्या कहा आपने?"

"मैन! उसका हार्ट फ़ेल हो गया। दिल का धड़कना रुक गया।"

"तो वह मर गया?"

"यस हमको यह होप न था।"

कवि की स्त्री सुशीला अमरनाथ से कुछ दूर खड़ी थी, यह सुनकर पास आ गई, और रोती हुई बोली, "भाई मुझे धोखे में न रखो, जो बात हो साफ़ साफ़ कह दो।"

अमरनाथ को कवि से हार्दिक प्रेम था। वह उसे इस प्रकार चाहते थे, जैसे भाई भाई को चाहता है। और इतना ही नहीं, उन्हें उससे बड़ी बड़ी आशाएँ थीं। प्रायः सोचा करते थे, यह भारतवर्ष का नाम करेगा। इसकी कविता टैगोर और अनातोल फ्रांस के समान है। वे जब उसके "चन्द्रलोक" को देखते तब मतवाले हो जाते थे। इस समय सर्जन के शब्दों ने उनके कलेजे पर अङ्गारे रख दिये। उनको एकाएक विश्वास न आया कि कवि सचमुच मर गया है। उन्होंने रेत की दीवार खड़ी की। उसकी स्त्री के प्रश्न का उत्तर न दिया, और दौड़ते हुए कमरे में घुस गये। कवि मेज़ पर लेटा हुआ था, और सर्जन निराशा के साथ सिर हिला रहा था। रेत की दीवार गिर गई। अमरनाथ

के हृदय पर कटारें चल गईं। सोचने लगे, कैसा सुन्दर तारा था, परन्तु उदय होने से पहले ही अस्त हो गया। इससे क्या क्या आशाएँ थीं, सब धूल में मिल गईं। सुना था, पवित्र और पुण्यात्मा जीव इस पापमय जगत् में अधिक समय तक नहीं ठहरते। इस समय इसका समर्थन हो गया।

अमरनाथ बाहर निकले, तो मुँह पर सफ़ेदी छा रही थी। सुशीला सामने आई, वह निराशा की मूर्ति थी। उसकी आँखें इस प्रकार खुली थीं मानो आत्मा की सारी शक्तियाँ आँखों में एकट्ठी होकर किसी बात की प्रतीक्षा कर रही हों। उसने अमरनाथ को देखा, तो अधीर होकर बोली, "बोलो! क्या हुआ?"

अमरनाथ की आँखों में आँसू आ गये। सुशीला को उत्तर मिल गया। उसने अपने दोनों हाथ सिर पर मारे, और पछाड़ खाकर पृथ्वी पर गिर गई।

अमरनाथ और भी घबरा गये। सुशीला को सुध आई, तो उसने आकाश सिर पर उठा लिया। उसका करुण-विलाप अमरनाथ के घावों पर नमक का काम कर गया। उनको साहस न हुआ कि उसकी ओर देख सकें। उसका रुदन हृदय को चीर देनेवाला था, जिसको सुनकर उनकी आत्मा थर्रा उठी। उन्होंने जेब से सौ रुपये के नोट निकाले और उसके हाथ में देकर ऐसे भागे, जैसे कोई बंदूक़ लेकर उनके पीछे आ रहा हो। यह दृश्य उनके कोमल हृदय के लिए असह्य था। घर जाकर सारी रात रोते रहे। उनको इस बात का निश्चय हो गया कि कवि की स्त्री इस मृत्यु का हेतु मुझे समझ रही है। अतएव उसके सामने जाते हुए डरते थे। सहानुभूति का सच्चा भाव झूठे वहम को दूर न कर सका।

कई दिन बीत गये। अमरनाथ के हृदय से कवि की असमय और दुःखमय मृत्यु का शोक मिटता गया। घायल हृदयों के लिए समय बहुत गुणकारी मरहम है। प्रातःकाल था। प्रेस-कर्मचारी "दर्पण" का अन्तिम प्रूफ़ लेकर आया। उसमें कवि को कविता थी, अमरनाथ के घाव हरे हो गये। कवि प्रायः कहा करता था कि कवि की सन्तान उसकी कविता है, अमरनाथ को यह कथन याद आ गया। कवि की कविता देखकर उनको वही दुःख हुआ जो किसी प्यारे मित्र के अनाथ बच्चे को देखकर हो सकता है। उन्होंने ठण्डी साँस भरकर प्रूफ़

देखना आरम्भ किया। कविता से नवीन रस टपकने लगा। सहसा उनके हृदय में एक पापपूर्ण भाव ने सिर उठाया। उन्होंने कुछ समय तक विचार किया, और फिर काँपती हुई लेखनी से कवि का नाम काटकर उनके स्थान में अपना नाम लिख दिया। मनुष्य का हृदय एक अथाह सागर है, जहाँ कमल के फूलों के साथ रक्त की प्यासी जोंकें भी उत्पन्न होती रहती हैं।

(५)

'दर्पण' का पहला अङ्क निकला, तो पढ़े-लिखे संसार में धूम मच गई। लोग देखते थे, और फूले न समाते थे। 'दर्पण' भाव और भाषा दोनों प्रकार से अत्युत्तम था, और विशेषतः "चन्द्रलोक" की काव्य-माला की पहली कविता पर तो कवि-संसार लट्टू हो गया। एक प्रसिद्ध मासिक पत्र ने तो उसकी समालोचना करते हुए लिखा—

"यों तो 'दर्पण' का एक एक पृष्ठ रत्न-भाण्डार से कम नहीं, परन्तु 'चन्द्र-लोक" की पहली कविता देखकर तो हृदय नाचने लगता है। इसकी एक एक पङ्क्ति में 'अधीर' महाशय ने जादू भर दिया है, और रस की नदी बहा दी है। सुना करते थे कि कविता हृदय के गहन भावों का विशद चित्र है। यह कविता देखकर इस कथन का समर्थन हो गया। निस्सन्देह 'अधीर' महाशय की ये कविताएँ हिन्दी-भाषा को फ्रांसीसी और अँगरेज़ी के समान उच्च कोटि पर ले जायँगी। 'अधीर' महाशय साहित्य के आकाश पर सूर्य्य की नाईं एकाएक चमके हैं। और एक ही कविता से कवि-मण्डल में शिरोमणि हो गये हैं।"

एक दूसरे समाचार-पत्र ने लिखा—

"अधीर महाशय की कविता क्या है, एक जादूभरा सौन्दर्य्य है। हिन्दी-भाषा का सौभाग्य समझना चाहिए कि इसमें ऐसे सूक्ष्म भावों के वर्णन करनेवाले उत्पन्न हो गये हैं, जिन पर भावी सन्तति उचित रूप से अभिमान करेगी। हमें दृढ़ विश्वास है कि यदि यह कविता इसी सुन्दरता से पूरी हो गई तो इसे हिन्दी में वही दर्जा प्राप्त हो जायगा जो संस्कृत में 'शकुन्तला' को, अँगरेज़ी में 'पैराडाईज़ लास्ट को', और वङ्ग-भाषा में 'गीताञ्जलि' को प्राप्त है। अधीर का नाम इस कविता से अमर हो जायगा।" और इतना ही नहीं इस कविता

का अनुवाद बँगला, मरहठी, गुजराती, अँगरेज़ी और फ्रांसीसी पत्रों में प्रकाशित हुआ, और प्रशंसा के साथ। अमरनाथ जिस पत्र को देखते उसमें अपना नामोल्लेख पाते। इससे उनकी आत्मा गद्गद् हो जाती। परन्तु कभी कभी हृदय में एक धीमी सी आवाज़ सुनाई दे जाती थी, "तू डाकू है"। अमरनाथ इस अन्तःकरण की आवाज़ को सुनते, तो चौंक उठते, परन्तु फिर दृढ़ सङ्कल्प के साथ उसको अन्दर ही अन्दर दबा देते थे।

इसी प्रकार एक वर्ष बीत गया। लाला अमरनाथ का नाम भारतवर्ष से निकलकर योरप तक जा पहुँचा। अँगरेज़ी पत्रों में उनकी कला पर लेख प्रकाशित हुए। मासिक पत्रों ने उनके फ़ोटो दिये। कविता पूरी हुई, तो प्रकाशक उस पर इस प्रकार टूटे, जैसे पतङ्गे दीपक पर टूटते हैं। अँगरेज़ी पबलिशरों ने अनुवाद के लिए बड़ी बड़ी रक़में भेंट कीं। अमरनाथ के पैर भूमि पर न लगते थे। परन्तु कभी कभी जब अपनी करतूत याद आती तब प्राण सूख जाते थे, जिस प्रकार विवाह की रङ्गरेलियों में मृत्यु का विचार आनन्द को किरकिरा कर देता है। परन्तु उन्होंने अपने स्वर्गीय मित्र को सर्वथा भुला दिया हो, यह बात न थी। वे उसकी स्त्री के नाम हर महीने पचास रुपये का मनीआर्डर करा दिया करते थे। वे इसे अपना कर्त्तव्य समझते थे।

(६)

रात्रि का समय था। कवि के मकान में शोक छाया हुआ था। वह मौत से तो बच गया था, परन्तु पाँच मील की दूरी पर अपने गाँव चला आया था, और मृतक के समान वर्ष भर से खाट पर पड़ा था। इस रोग ने उसके शरीर का रक्त चूस लिया था, मुख का रङ्ग। अब वह केवल हड्डियों का पिंजर रह गया था। दिन-रात चारपाई पर लेटा रहने के कारण उसका स्वभाव भी चिड़चिड़ा हो गया था। इस पर अमरनाथ का एक बार भी न आना उसकी क्रोधाग्नि पर तेल का काम कर गया। आठों पहर दुखी रहता था, और अमरनाथ को गालियाँ देता रहता था। सुशीला समझाती, नहीं आते तो क्या हुआ, अब कोई तुम्हारे शत्रु तो नहीं हो गये। पचास रुपया मासिक भेज रहे हैं, नहीं तो दवा के लिए भी तरसते फिरते। क्या जाने किसी आवश्यक कार्य में लगे हों। कवि यह

सुनता तो तलमला उठता, और कहता—"रुपया वापस दिया जा सकता है, परन्तु सहानुभूति के दो शब्द वह ऋण है जिसे चुकाना मनुष्य की शक्ति से बाहर है। यदि उसके वश में होता तो वह रुपये वापस कर देता। उपेक्षा-भाव मनुष्य के लिए एक निकृष्टतर व्यवहार है। वह गालियाँ सह सकता है, मार खा सकता है, परन्तु उपेक्षा नहीं सह सकता। कवि इसी प्रकृति का मनुष्य था।

रात्रि का समय था। कवि के मकान में एक मिट्टी का दीपक जल रहा था, जैसे निराशा की अवस्था में आशा की किरण टिमटिमाती है। कवि चारपाई पर लेटा हुआ था, और सोच रहा था, परमेश्वर जाने "चन्द्र-लोक" का क्या बना! उसे यह भी ज्ञान न था कि 'दर्पण' निकला भी है या नहीं? इस कविता से क्या क्या आशाएँ थीं। रोग ने सब मिट्टी में मिला दीं। इतने में दरवाज़ा खुला। कवि का एक मित्र रतलाल अन्दर आया। उसके हाथ में एक सजिल्द पुस्तक थी। कवि ने पूछा, "यह क्या है?"

"दर्पण की फ़ाइल है।"

कवि का कलेजा धड़कने लगा। उसने विस्मित होकर पूछा, "क्या दर्पण की फ़ाइल?"

"हाँ! देखोगे?"

"अवश्य! ज़रा दीपक इधर ले आओ।"

बच्चे भूख से बिलबिला रहे थे। सुशीला उनके लिए रोटी पका रही थी। आटे का पेड़ा बनाते बनाते बोली, "अब क्या पुस्तक पढ़ोगे? हकीम ने मना किया है, कहीं फिर बुख़ार न हो जाय।"

परन्तु कवि ने सुना अनसुना कर दिया, और दर्पण का फ़ाइल देखने लगा। अपनी पहली कविता देखकर उसका चेहरा खिल गया, जैसे फूल की कली। एक एक पद पढ़ता था, और सिर धुनता था। सोचता था, क्या यह मेरे मस्तिष्क की रचना है। कैसा कलाकौशल है, कैसे ऊँचे भाव। एक एक विचार में आकाश के तारे तोड़कर रख दिये गये हैं। उसको अपने भूतकाल पर ईर्ष्या होने लगी। क्या अब भी बुद्धि को यह कला प्राप्त है? हृदय शोक में डूब गया।

एकाएक कविता की समाप्ति पर दृष्टि गई। अमरनाथ अधीर का नाम पढ़

कर कवि के कलेजे में जैसे किसी ने गोली मार दी। उसको उनसे यह आशा न थी। उसको यह गुमान भी न हो सकता था कि अमरनाथ इतने पतित हो सकते हैं। अपने परिश्रम पर यह डाका देखकर कवि का रक्त उबलने लगा, और आँखों से अग्नि की चिनगारियाँ निकलने लगीं। वह क्रोध से तकिये का सहारा लेकर बैठ गया, और अपने मित्र से बोला, "काग़ज़ और क़लम-दवात लाओ। मैं एक गीत लिखूँगा।"

इससे पहले वह कई बार गीत लिखने को तैयार हुआ, परन्तु दुर्बलता ने उसके इस संकल्प को पूरा न होने दिया। रत्नलाल ने उत्तर दिया; "रहने दो। तुम्हारा दिमाग़ काम न कर सकेगा।"

कवि ने अपने हाथ की मुट्ठियाँ कस लीं, और भूखे शेर की नाईं गर्जकर कहा, "तुम क़लम-दवात लाओ। मैं लिखा सकूँगा।"

रत्नलाल ने मैशीन के समान आज्ञा-पालन किया। कवि बोला, शीर्षक लिखो "लुटी हुई कीर्ति।"

रत्नलाल ने लिखकर कहा, "लिखाइए।"

कवि ने लिखवाना आरम्भ किया। कविता का स्रोत खुल गया। जिस प्रकार वर्षा के दिनों में नदी-नालों में बाढ़ आ जाती है, उसी प्रकार इस समय कविता का प्रवाह वेग से बह रहा था। विचार आपसे आप ग्रथित हो रहे थे। उसे सोचने की आवश्यकता न थी। परन्तु कविता साँचे में ढली हुई थी, मानो जिह्वा पर सरस्वती आकर बैठ गई थी। क्या सुलझे हुए विचार थे, कैसे प्रभावशाली भाव। पद पद से अग्नि के चिङ्गारे निकल रहे थे। जिस प्रकार नव-वधू का सुहाग उजड़ जाने पर उसका हृदयवेधी चीत्कार करुणा-भरे हृदयों में हलचल मचा देता है, उसी प्रकार इस कविता को देखकर मस्तिष्क खौलने लगता था, और हृदय में विचार विश्वास बनकर बैठ जाता था कि कोई अत्याचार-पीड़ित अत्याचारी के विरुद्ध पुकार कर रहा है।

एकाएक दरवाज़ा खुला, और अमरनाथ अन्दर आये। इस समय उनका मुख-मण्डल अस्त होते हुए सूर्य्य के समान लाल था। कवि ने उनको देखा तो चौंक पड़ा, जैसे पाशबद्ध पक्षी व्याध को देखकर चौंक उठता है। कवि ने घृणा से मुँह फेर लिया, परन्तु अमरनाथ ने उसकी परवा न की और रोते हुए कवि

के पैरों से लिपट गये, जैसे दोषी बालक पिता की गोद में मुँह छिपा-कर रोता है।

रत्नलाल और सुशीला दोनों आश्चर्य में थे। कवि ने रुखाई में कहा, "यह क्या करते हो?"

अमरनाथ ने उत्तर दिया, "मैंने तुम्हारा अपराध किया है, जब तक क्षमा न करोगे, पैर न छोड़ूँगा। मुझे आज ही मालूम हुआ है कि तुम जीवित हो, नहीं तो यह पाप न होता।"

कवि ने कुछ देर सोचा और कहा, "तुम्हें लज्जा तो न आई होगी?"

"यह कुछ न पूछो, अब क्षमा कर दो।"

"प्रकृति के कान क्षमा के नाम से अपरिचित हैं। प्रायश्चित्त करो।"

"वह मैं कर दूँगा।"

"परन्तु कैसे?"

अमरनाथ ने जेब से एक काग़ज़ निकाला, और कवि के हाथ में रख दिया। कवि ने उसे पढ़ा, और स्तम्भित रह गया "क्या तुम यह नोट प्रकाशित कर दोगे?"

"इसके सिवा और उपाय ही क्या है?"

"इतना यश छोड़ दोगे?"

"छोड़ दूँगा।"

"तुम्हारी निन्दा होगी। लोग क्या कहेंगे?"

अमरनाथ ने आग्रह से कहा, "चाहे कुछ भी कहें, मैं अपने दोष को स्वीकार करूँगा। इससे मेरा अन्तःकरण शान्त हो जायगा। कवि! संसार मुझसे ईर्ष्या करता है। परन्तु मुझे रात को नींद नहीं आती। मैंने तुम्हारे परिश्रम का लाभ उठाया है, तुम्हारी रचनाओं ने मेरा नाम योरप तक पहुँचा दिया है। परन्तु—तुम वह कीर्त्ति, यह नाम एक दिन में मुझसे वापस ले सकते हो। मैं उस कौवे के समान हूँ जिसने मोर के पङ्ख लगाकर सुन्दर प्रसिद्ध होना चाहा था। तुम्हारी कविताओं का भाण्डार समाप्त हो चुका है, अब मैं शुष्क स्रोत हूँ। संसार मुझसे नये विचार, नये भाव माँगेगा। मैं उसे क्या दे सकता हूँ—नहीं नहीं मैं अपना पाप स्वीकार कर लूँगा, और तुम्हारी कीर्त्ति तुम्हारे अर्पण कर दूँगा। बोलो, मुझे क्षमा कर दोगे?"

कवि का हृदय भर आया। उसके नेत्रों में आँसू लहराने लगे। उन आँसुओं में हृदय की घृणा बह गई। उसने सच्चे हृदय से उत्तर दिया, "यह न करो, मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ।"

अमरनाथ तनकर खड़े हो गये, और बोले, "प्रायश्चित्त किये बिना मुझे शान्ति न आयेगी।"

यह कहकर उन्होंने जेब से नोटों का एक बंडल निकाला, और कवि को देकर कहा, "यह तुम्हारी दौलत है।"

कवि ने गिना, तीन हज़ार के नोट थे, पूछा, "ये कैसे हैं?"

"अँगरेज़ी ऐडीशन की रायल्टी है। इसे स्थायी आय समझो। मैंने पबलिशर को सूचना दे दी है कि भविष्य में रायल्टी सीधी तुम्हें भेजी जाय।"

कवि की आँखों में आँसू भर आये। वह अमरनाथ के गले से लिपटकर रोने लगा।

(७)

दिन चढ़ा, तो कवि की अवस्था बहुत कुछ बदल चुकी थी। इतने में अमरनाथ का एक नौकर आया। उसके मुख का रङ्ग उड़ा हुआ था। आते ही बोला, "लालाजी चल बसे।"

कवि का कलेजा मुँह को आ गया। उसने ज़ख़्मी पक्षी की नाईं तड़पकर कहा, "क्या कहा तुमने?"

"लालाजी चल बसे। रात को कुछ खा लिया।"

कवि के हृदय में क्या क्या उमङ्गें भरी हुई थीं, सब पर पानी फिर गया। अमरनाथ की भलाइयाँ सामने आ गईं। कैसा देवता मनुष्य था? पाप का प्रायश्चित्त किस शान से कर गया? हाथ आया हुआ धन किस सुगमता से मेरे अर्पण कर दिया। और इतना ही नहीं, मेरी कीर्ति मुझे वापस दे गया। अपने पाप को अपने हाथ से स्वीकार कर गया। कवि का हृदय रोने लगा।

सहसा विचार आया, अब "चन्द्रलोक" का लेखक होने का दावा करना ओछापन है। वह मेरे साथ इतनी भलाई करता था, क्या मैं उसके शव का अपमान करूँगा। कवि ने उदारता का प्रमाण देने का निश्चय कर लिया, और

ताँगे में बैठकर वर्ष भर के रोग के पश्चात् पहली बार शहर के स्मशान में पहुँचा। वहाँ नगर भर के बड़े बड़े विद्वान् मौजूद थे। कवि ने "अधीर की कविता" पर एक ओजस्विनी वक्तृता की और उसकी प्रशंसा में कोश के सुन्दर और रसीले शब्द समाप्त कर दिये।

दूसरे मास का "दर्पण" कवि की एडीटरी में प्रकाशित हुआ। उसमें स्वर्गवासी अधीर के नाम से एक हृदय-वेधक कविता प्रकाशित हुई, जिसका शीर्षक "लुटी हुई कीर्ति" था, और कवि की ओर से एक छोटा सा नोट निकला।

"अधीर मर गये, परन्तु उनकी कविता अमर है। पाठक यह पढ़कर प्रसन्न होंगे कि अधीर अपने पीछे कविताओं का एक बहुत बड़ा अप्रकाशित भाण्डार छोड़ गये हैं, ये कविताएँ दर्पण में क्रमशः निकलती रहेंगी।"

इसके पश्चात् कवि ने जो कविता लिखी वह अधीर के नाम से प्रकाशित हुई। कैसा उच्च बलिदान है, कैसा निस्स्वार्थ त्याग। संसार में रुपया-पैसा त्यागनेवालों की कमी नहीं। युद्ध-क्षेत्र की अग्नि में कूद पड़नेवालों की कमी नहीं। परन्तु इन सबके सामने एक लालसा होती है—एक कामना कि हम मर जायँ, परन्तु हमारा नाम प्रसिद्ध हो जाय, जो अजर अमर हो। परन्तु इस नाम का त्याग करनेवाले कितने हैं?

कवि ने मित्र के लिए अपने नाम को निछावर किया।